ISSN : 2347-7660 (Print) | ISSN : 2454-1818 (Online)

जातिवादी मानसिकता एवं पौरोहित्यवाद के शोषण की चरम परिणति
(भगवान दास रचित आत्मकथा 'मैं भंगी हूँ' के विशेष सन्दर्भ में)

डॉ0 सियाराम,
एसो0 प्रो0– हिन्दी विभाग,
तिलक महाविद्यालय,
औरैया (उ0प्र0)

'मै भंगी हूँ' प्रख्यात् अम्बेडकरवादी चिन्तक, बौद्ध धर्मानुयायी, प्रसिद्ध दलित लेखक श्री भगवान दास विरचित आत्मकथात्मक कृति है। इसका प्रकाशन इसी नाम से सन् 1981 ई0 में जालंधर से किया गया था। उस समय इस पर मिली–जुली प्रतिक्रियाएँ हुई थीं। यद्यपि प्रकाशक इसे अधिक अच्छी पुस्तक नहीं मानता था तथापि उसी समय दलित समुदाय के शिक्षित लोगों में इसे खूब पसन्द किया गया था। बकौल भगवान दास – ''इस पुस्तक में कहानी केवल भंगी जाति की ही कहानी नही है बल्कि यह सभी अछूत जातियों की कहानी है। कुछ मामूली बातों को छोड़कर शेष सभी स्थितियों में एक तरह की समरूपता पायी जाती है। अछूत जातियों के नाम, पेशे, काम अलग–अलग हो सकते हैं परन्तु उनके प्रति तथाकथित ऊँची जातियों का व्यवहार घृणा, शोषण, अत्याचार गरीबी और गरीबी से पैदा होने वाली कमजोरियों में कोई फर्क नही हैं।'' लेखक की यह स्वीकारोक्ति यह सिद्ध करती है कि आलोच्य कृति 'आत्मकथा' के प्रचलित मानदण्डों से कहीं व्यापक फलक पर लिखी गयी है।

'आत्मकथा' लेखक द्वारा लिखी गयी स्वयं अपनी जीवनी है। इसे आत्मचरित्र या आत्म चरित भी कहा जाता है जो तत्त्वतः आत्मकथा से अभिन्न है। यह कृति लेखक की आप बीती को अपेक्षाकृत अधिक रोचक एवं सुपाठ्य रूप में प्रकट करती है। इसका उद्देश्य आत्म प्रकाशन एवं आत्म परीक्षण करने के साथ–साथ लेखक के अनुभव से पाठक वर्ग को परिचित व लाभान्वित कराना है। इसके अतिरिक्त आत्मकथा लेखन के मूल में कालात्मक अभिव्यक्ति की प्रेरणा भी कार्य करती है, साथ ही अपने पद– मर्यादा व ख्याति से लाभ उठाने की शुद्ध व्यावसायिक इच्छा भी। प्रसिद्ध आलोचक– कथाकार श्री राजेन्द्र यादव आत्मकथा को समय के न्यायाधीश के सामने दिया गया बयान माना है। वे श्रेष्ठ आत्मकथा उसे मानते हैं जिसमें लेखक के अंतरंग अनछुए और अकथनीय प्रसंगों का ऐसा अन्वेषण जो विश्वसनीय एवं आत्मीय हो। आत्मकथाएँ समाज का व्यक्तिगत एवं आंतरिक इतिहास प्रस्तुत करती हैं। 'मै भंगी हूँ' सहित दलित आत्मकथाओं के सम्बन्ध में राजेन्द्र जी का मानना है कि ''खासतौर से ये उन उपेक्षित और हाशिए पर डाल दिये गये लोगों की यातना कथाएँ हैं जिनके पास पीछे लौटने के लिए महान अतीत नही है, सिर्फ वीभत्स वर्तमान है। इसी लिए वे केवल उस व्यक्ति की ही नही बल्कि उसके जीवन के साथ–साथ उस समाज की भी आत्म कथाएँ बन जाती हैं जहाँ से वह उठने की कोशिश करता है।'' इसी लिए बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में तथा उसके पश्चात् लिखी गयीं दलितों एवं स्त्रियों की आत्मकथाएँ मात्र लेखक की आत्मकथाएँ नही माननी चाहिए वरन् वे उनके पूरे समाज की आत्मकथाएँ हैं। इसी तथ्य को आलोच्य रचनाकार भगवान दास ने अपनी आत्मकथा के द्वितीय संस्करण की भूमिका में सहज स्वीकार किया है 'मै भंगी हूँ' एक अछूत द्वारा लिखी हुई अछूत जाति की आत्म कथा है।''

हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक प्रो0 मैनेजर पाण्डेय का मानना है कि ''आत्मकथा के केन्द्र में सच ही होता है, झूठ नही।'' ऐसा सच जो व्यक्ति का हो, आत्मा का हो, परिवेश, समाज और संसार का सच हो। चूँकि आत्मकथा में काल्पनिक सच का कोई महत्त्व नही होता इसी लिए हिन्दी साहित्य में आत्मकथाओं का लेखन बहुत कम हुआ है। इस सम्बन्ध में प्रो0 मैनेजर पाण्डेय का यह कथन सर्वथा उचित ही है ''जिस समाज में व्यक्ति के पास सच कहने के साहस का अभाव होता है और समाज में सच को स्वीकार करने की सहनशीलता कम होती है, उस समाज में आत्मकथा लेखन का विकास कठिन होता है। भारतीय समाज में अश्लीलता को शालीनता की चादर से ढककर जीने और सुसंस्कृत बने रहने की प्रवृत्ति बहुत है। .... भारतीय समाज में आत्म स्वीकार की प्रवृत्ति बहुत कम मिलती है।'' हिन्दी की दलित आत्मकथाओं ने भारतीय परम्परागत समाज के नग्न यथार्थ को सामने ला दिया है। भारतीय समाज अपने ही एक वर्ग विशेष के प्रति सदियों से कैसा असहिष्णु, अमानवीय, अकल्पनीय अत्याचार करता रहा है, इसकी 'पोल' खोलती हैं– ये आत्मकथाएँ।

भंगी कोई जाति विशेष नहीं है। यदि भारतीय इतिहास पर दृष्टिपात किया जाय तो यह स्पष्ट होता है कि पूर्व में जाति व्यवस्था के अन्तर्गत 'भंगी' नामक कोई जाति नही थी। वैदिक कालीन तथा उसके पश्चात् के ग्रन्थों का अध्ययन करने के उपरान्त हमें वहाँ वर्ण व्यवस्था के साथ–साथ चाण्डाल, असुर, राक्षस, नाग, किन्नर आदि का विशद् वर्णन प्राप्त होता है। समय के साथ कालान्तर में इन्हें स्थान भेद के अनुसार अनेक नामों से अभिहित किया गया, जैसे– कही चूहड़ा, कहीं कोटाना, कहीं हेला, मखियार, डुमार, महार, मादिगा, कोरवा, मांग, हाँडी कहा गया तो कहीं चाण्डाल, रेली, थोती, कोराड़, धानुक, उलगाना, डोम, पासी, रावत, मुईमाली, बाल्मीकि, लालबेगी, शेखा, मलकाना, मुसल्ली, मेहतर, या खाकरोब। समय एवं सत्ता परिवर्तन के साथ–साथ समाज के इस बहुसंख्यक वर्ग को परमात्मा की तरह विभिन्न संज्ञाओं से सम्बोधित किया गया। यह वर्ग हिन्दुओं की वर्णाश्रम व्यवस्था से बिल्कुल अलग था। उनके समाज में इनका स्थान मनुष्य के रूप में कभी मान्य नही रहा है। भगवान दास जी 'भंगी' कौन हैं इसका उत्तर देते हुए कहते है – ''मैं भंगी हूँ, समाज का भंग किया हुआ अंग। जो कभी इस धरती का स्वामी था और फिर गुलाम बनाया गया।'' आगे लेखक भंगी बनने और बनाने की प्रक्रिया का तार्किक वर्णन करते हुए कहता है कि ''मैं भंगी हूँ। भारत का प्राचीन वासी जिसने गुलामी स्वीकार नही की, जिसने आक्रमणकारियों के विरुद्ध संघर्ष जारी रखा। मैं न उसके राजाओं तथा पुराहितों के आगे नतमस्तक हुआ, न आक्रमणकारियों के खुदाओं की पूजा की। मैं इस स्वतंत्रता की सुरक्षा करने वाली जाति का टूटा अंग हूँ।''

विश्व का इतिहास इस बात का साक्षी है कि जहाँ–जहाँ जातीय एवं नस्लीय संघर्ष हुए हैं वहाँ–वहाँ विजेताओं ने पराजित जाति के साथ हर प्रकार के अमानवीय एवं अन्यायपूर्ण बर्ताव किये हैं। चाहे अमेरिका के रेड इण्डियनों की बात की जाय या रोम और यूनान द्वारा गुलाम बनाने गये लोगों की। हर जगह सत्ताधारी शोषक वर्ग ने अत्यधिक श्रम वाले कार्यों को अपने शासितों से ही कराया है। भारत भूमि पर सिन्धु घाटी सभ्यता–काल से ही अनेक आक्रान्ताओं के आक्रमण होते रहे हैं। हर आक्रमणकारी यहाँ नये जोश एवं नवीन युद्ध सम्बन्धी आविष्कारों के साथ आते और यहीं के कतिपय स्वार्थी नागरिकों का सहयोग पाकर स्वयं विजय पाते। यहाँ के पूर्ववर्ती शासकों तथा नागरिकों में जो जीवित बचते उन्हें या तो गुलाम बनाकर नीच कार्य करवाये जाते अथवा वे भागकर अन्य क्षेत्रों में भटक–भटक कर जीवन यापन करने को विवश होते। भारत की आदिवासी तथा भ्रमणशील घुमन्तू जातियाँ इस

तथ्य की गवाह हैं। वे आज भी शहरों से बाहर जंगलों में रहती हैं। जंगली जानवरों की तरह कन्दमूल फलों एवं शिकार पर गुजारा करते हैं। अछूत मानते हुए भी हिन्दू संस्कृति में इन्हें भूमिपुत्र मानती है। चूँकि वैदिक संस्कृति युद्ध आधारित कबीलाई संस्कृति थी, वहाँ वध संस्कारों का बोलबाला था। अतः बहुत कुछ सम्भव है कि इस संस्कृति के पोषकों ने यहाँ के पूर्ववती निवासियों को पराजित कर या तो उन्हें गुलाम बनाकर श्रम आधारित कार्यों को करने के लिए विवश किया या वे स्वयं भागकर छिप–छिपाकर जीवन यापन करने लगे। कालान्तर में युद्ध प्रेमी संस्कृति की वर्चस्व वृद्धि ने उन्हें नीच एवं अछूत समझे जाने वाले कार्यों को करने के लिए विवश किया। हिन्दी में एक कहावत है– 'मार–मार के भंगी बनाना'। इस कहावत से स्पष्ट ध्वनित होता है कि समर्थ लोगों ने असमर्थों एवं पराजितों पर इतने जघन्य व क्रूर अत्याचार किये होगें जिससे वे अलाभकारी, नीच समझे जाने वाले कार्यों को करने के लिए विवश हो गये। हमारा कहने का अभिप्राय यह है कि सदियों से ऐसा होता आया है और 'भंगी' (पराजित जाति) के साथ भी ऐसा ही हुआ होगा। अतः आलोच्य रचनाकार की यह स्वीकारोक्ति कि भंगी समाज का भंग किया हुआ अंग है, तार्किक एवं तथ्याधारित है।

हिन्दू धर्म ग्रन्थों, यथा– गीता, रामायण, महाभारत, पुराणों, धर्मशास्त्रों आदि में 'अस्पृश्यता' के नियम का अत्यन्त कठोरता से पालन किया गया है। जो हिन्दू जितना अधिक छुआछूत मानता है, आज भी उसे उतना ही अधिक ऊँचा 'हिन्दू' माना जाता है। इसीलिए घृणा और छुआछूत हिन्दू धर्म के प्रधान अंग बन गये हैं। भारतीय समाज का बहुसंख्यक वर्ग प्राचीन काल से लेकर आज तक हिन्दू धर्म की इस घृणित विखण्डनवादी मानसिकता का शिकार होता चला आया है। आज भी ब्राहमण अपने को सर्वोपरि एवं पवित्र मानता है, वह अन्य वर्णों (क्षत्रिय–वैश्य) से छुआछूत का व्यवहार करता है तो तथाकथित शूद्रों एवं अति शूद्रों की बात ही क्या। क्षत्रिय दोयम दर्जे पर रहते हुए ब्राहमण के पैर पूँजता है और ब्राह्मणों के दिये गये विधान का कठोरता से पालन करता है। वह स्वयं पूर्ण शिक्षित होते हुए भी मूर्ख, अनपढ़, जाहिल और बेईमान ब्राहमणों की वन्दना करता है। वैश्य के लिए ब्राहमण भगवान तथा क्षत्रिय मालिकान हैं। अन्य वर्ग में भी इन तथाकथित उच्च वर्गीय लोगों की दृष्टि में स्वयं को ऊँचा सिद्ध करने में सम्पूर्ण ऊर्जा लगाये रहने की प्रवृत्ति हैं। यह गैर बराबरी का बेवकूफाना सिद्धान्त भारतीय समाज में इतने गहरे तक जड़ें जमा चुका है कि मनुष्य स्वयं मनुष्य के साथ घोर अमानवीय व्यवहार करके खुश होता है। आज भी गाय, भेड़, बकरी, घोड़ा, भैंस, कुत्ता, बिल्ली जैसे पशुओं के स्पर्श से अपवित्र न होने वाला हिन्दू नीच एवं अछूत' समझे जाने वाले मनुष्यों के स्पर्श मात्र से अपवित्र हो जाता है। आज भी देश के कई स्थानों पर मन्दिरों के 'देवता' तथाकथित निम्न जातियों की छाया मात्र से मैले हो जाते हैं। ऐसी सैद्धान्तिकी भारतवर्ष के बाहर कहीं और किसी अन्य देश में ढूढ़ने पर भी नही मिलेगी। हिन्दू धर्म की इसी ब्राहमणी व्यवस्था पर प्रहार करते हुए आलोच्य कृति में कहा गया है कि ''हम दोनों (ब्राहमण और भंगी) दो छोरों के प्रतीक हैं। वह झूठ–फरेब, छल–कपट, हिंसा लेकर खड़ा है; मैं सत्य, स्वच्छता, सेवा और समानता को लेकर खड़ा हूँ। मेरे कुछ नियम हैं परन्तु उसके शब्दकोष में ईमानदारी नाम का कोई शब्द नही। वह सत्ता से प्यार करता रहा, मैं सेवा में लगा रहा। वह अभी तक जीतता आया हैं क्योंकि असत्य हमेशा सत्य को पराजित करता आया है परन्तु सत्य अमर है, असत्य नाशवान है। मेरी हार होती रही परन्तु सच्चाई के मुख पर झूठ और असत्य की कालिख पोती जा सकती है, उसे पथ भ्रष्ट नही किया जा सकता, फुसलाया नही जा सकता, मिटाया नही जा सकता।'' धर्म जिससे नैतिकता, सदाचार, मानवता आदि की शिक्षा मिलती है किन्तु जब उसी के अनुयायी अपने

समान धर्मा मनुष्य के साथ बेरहमी का व्यवहार करने लगें और इस पर भी उन्हें राज सत्ता का सहयोग मिल जाये तो करेला नीम चढ़ ही जायेगा। राज सत्ता और धर्म सत्ता ने देश के मूल निवासी पराजित वर्ग के साथ पशुवत् एवं नृशंस व्यवहार किया। भरपूर शारीरिक श्रम लेने के पश्चात् भी उन्हें न भरपेट भोजन दिया, न तन ढकने को पर्याप्त वस्त्र और न रहने के लिए समाज में स्थान ही। इसी तथ्य का संकेत 'मैं भंगी हूँ' में करते हुए रचनाकार कहता है– ''मनु, आपस्तम्ब, गौतम, नारद, वशिष्ठ, कौटिल्य, व्यास तथा बाल्मीकि किसी ने भी रहम नही किया मुझ पर। शमशान को मेरा घर बनाया गया मुर्दों के कफन, फटे चिथड़े, काले रंग का लिबास मेरी वेशभूषा, कौओं और मुर्गों के पंख मेरा मुकुट, मिट्टी और लोहे के बर्तन मेरी सम्पत्ति, जूठा बचा खाना और मरे हुए जानवरों का सड़ा मांस मेरी खुराक, सुअरों और गधों की संगति मेरे लिए आरक्षित कर दी गयी। जूठन और उतरन मेरा इनाम बनाया गया।''

दार्शनिकों और विचारकों के इस तथाकथित 'महान' देश में समाज के इस बहुसंख्यक वर्ग के प्रति असहिष्णुता का बर्ताव सदैव किया गया किन्तु महात्मा बुद्ध के आविर्भाव एवं उनके धम्म प्रचार–प्रसार से इस अधिसंख्य वर्ग को अपनी मुक्ति की आश बँधी क्योंकि तथागत की दृष्टि में ऊँच–नीच, जाति–पाँति, छूत–अछूत का कोई भेद न था, उनका स्पष्ट आदेश था कि ''हे भिक्षुओं, जिस तरह गंगा, यमुना, इचरवति, सरयू, मही आदि नदियाँ समुद्र में जा मिलने पर अपने–अपने नाम छोड़कर केवल समुद्र का नाम धारण कर लेती हैं, उसी प्रकार क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों के व्यक्ति बुद्ध के संघ में आने के पश्चात् अपने पहले नाम तथा गोत्र छोड़कर केवल बौद्ध भिक्षु के नाम से ही पहचाने जाते हैं।'' तथागत के इसी आदेश का सुपरिणाम था कि बौद्ध धर्म में राजा, महाराजा, राजकुमार, ब्राह्मण, वैश्य एवं शूद्र सभी बराबर के स्थान के अधिकारी थे। सभी को धम्म में प्रवेश के पश्चात् अर्हत्व प्राप्त करने का समान अधिकार था। संघ में सभी को भिक्षु या भिक्षुणी के रूप पहचाना जाता था न कि उनके जाति, वर्ण, कुल, गोत्र के अनुसार। संघ में प्रवेश के साथ ही व्यक्ति का पुराने जीवन से सारा सम्बन्ध टूट जाता था। प्रत्येक प्रकार की पहचान एवं वर्ण– वर्ग अभिमान को तोड़ने के लिए बौद्ध धर्मानुसार प्रत्येक भिक्षु एवं भिक्षुणी को कूड़ा–करकट से पुराने वस्त्र, चीथड़े तथा श्मशान से मुर्दों के अवशेष कफन को चीवर, गुदड़ा बनाने के लिए एकत्र करना पड़ता था। भिक्षाटन से अर्जित धन–सम्पदा संघ की सम्पत्ति होती थी न कि व्यक्तिगत। धर्म के प्रसार के साथ भिक्षुओं को धर्म में दीक्षित करने का अधिकार भी मिला हुआ था। संघ के सभी भिक्षु सफाई का काम करते थे, सभी झाड़ू लगाते तथा शौचालय साफ करते थे, कोई किसी का सेवादार नही था, सब अपना काम स्वयं करते थे। बौद्ध धर्म की इसी समानता एवं बराबरी की तरफ आकर्षित होकर समाज से भंग बहुसंख्यक वर्ग ने इसे श्रद्धा एवं विश्वास के साथ अपनाया। अब धम्म प्रचार से देश के नागरिकों में सत्य, अहिंसा, करूणा, मैत्री, त्याग, अध्यवसाय की प्रवृत्ति बढ़ने लगी और समाज शान्त एवं खुशहाल होने लगा। किन्तु बुद्ध के महापरिनिर्वाण के कुछ समय पश्चात् ही बौद्ध धर्म में पूर्ववर्ती धर्मों की बुराईयाँ आने लगी। इसी का वर्णन करते हुए भगवान दास जी कहते हैं– ''पहले जो लोग भगवान बुद्ध की शरण में आते थे, वे सत्य, समानता, शान्ति तथा निर्वाण की खोज में आते थे। तथागत के नये धर्म को श्रद्धा और विश्वास से अपनाते थे। पंचशील, दशशील, अष्टांग मार्ग पर अमल करते थे। दिन–रात अपने दोषों को मिटाने तथा स्वच्छ जीवन बिताने का प्रयत्न करते थे। उनका उद्देश्य था कि भगवान बुद्ध के दिखाये मार्ग पर चलकर स्वयं अपना तथा मानवता का दुःख दूर करे परन्तु नये आने वालों में अधिक संख्या ऐसे लोगों की थी जो ऐशो आराम तथा

राज–दरबारों में इज्जत और शान चाहते थे। केवल चीवर पहन लेने से उनका मान बढ़ जाता था परन्तु उनका धर्म कपड़े के नीचे नही था। उन्होंने वेशभूषा बदली थी मन नही। नाम बदला था चलन नही। इससे संघ में वर्ग भेद तथा जाति भेद आने लगा।'' इस प्रकार धीरे–धीरे बौद्ध धर्म अपने इन्ही नवागन्तुकों की आचार भ्रष्टता से कलुषित होने लगा और कालान्तर में बौद्ध बिहार में ही शिक्षा प्राप्त एक ब्राहमण शंकर के द्वारा ही बौद्ध धर्म के उत्क्षेदन का कुत्सित प्रयास भी किया गया। उसने ब्राहमणों के वर्चस्व स्थापन के लिए दक्षिण भारत से चलकर उत्तर भारत की यात्रा की और शोषण के प्रतीक चार मठों की स्थापना भी की। फिर भी बौद्ध धर्म आम जनता में जीवित रहा किन्तु कालान्तर में मजहब के नशे में चूर, अंधविश्वास से लबरेज इस्लामी आक्रमण के फलस्वरूप बौद्ध बिहार नष्ट–भ्रष्ट किये गये। उस समय नालन्दा विश्वविद्यालय जहाँ दस हजार शिक्षक एवं पचास हजार शिक्षार्थियों के आवास, खान–पान, एवं अध्ययन–अध्यापन की उपयुक्त व्यवस्था थी उसे जमींदोज कर दिया गया। वहाँ के पुस्तकालय में लगी आग ने पूरे महीने प्रज्ज्वलित रहकर संसार की मानवता की अमूल्य धरोहर पाण्डुलिपियों को जलाकर भस्म कर दिया। भारत भूमि पर इतना नृशंस एवं जघन्य अत्याचार इसके पहले कभी नही हुआ था। बाद में सुंगों, कुषाणों एवं हूणों ने अपनी मूर्खता से बचे बौद्ध बिहारों को नष्ट किया, उन पर हिन्दू धर्म के मन्दिरों की नींव रखी और शनैः–शनैः पुनः ब्राह्मणों का वर्चस्व स्थापित हो गया और इसी के साथ बहुसंख्यक वर्ग पर कुलीनता, श्रेष्ठता और छुआछूत की भावना फिर थोप दी गयी।

भारत में इस्लाम के प्रवेश एवं उनके समानता, बंधुत्व और बराबरी की भावना से प्रेरित हो कतिपय जातियों ने धर्म परिवर्तन किया। इसके कई कारण थे जैसे इस्लाम की बंधुत्व भावना ने सदियों से अपवित्रता, अस्पृश्यता से पीड़ित बहुसंख्यक समुदाय को अपनी ओर सहज आकर्षित किया, दूसरे धर्मान्तरित हो जाने पर जीविका के बेहतर साधन उपलब्ध हो जाते थे और भी हिन्दुओं के अत्याचार और अनाचार, तिरस्कार–घृणा आदि का बदला लेने का अवसर उपलब्ध हो जाता था। इसी सम्बन्ध में लेखक ने पौरोहित्य धर्म के कारण समाज में व्याप्त हुई विखण्डनवादी प्रवृत्ति का भी वर्णन किया है। स्वयं लेखक कहता है– ''अपने सम्मान या आन के लिए लड़ना–मरना आवश्यक होता है। मैं लड़ सकता था परन्तु लड़ना भी तो किसके लिए ? उस ब्राह्यण की रक्षा के लिए जिसने मुझे नीच और अछूत बनाया था या उस क्षत्री राजा के लिए जिसने अपना दिमाग ब्राह्मणों के पास गिरवी रख दिया था और मुझ पर अत्याचार करता था या उस भूपति और व्यापारी के लिए जिसकी नजर में मैं पशु से भी नीचा था या निर्धनता और गुलामी को मजबूत बनाने के लिए ?'' कहने की आवश्यकता नही है कि देश का बहुसंख्यक वर्ग ऐसा क्यों सोचता था ? जहाँ जातिवादी कट्टरता हो, धार्मिक लोलुपता, कुलीनता, अनैतिकता, स्वार्थ और घृणा का वर्चस्व हो, नित नयी–नयी जातियाँ–उपजातियाँ नागफनी की तरह फैल रही हों ऐसे देश और समाज का परतंत्र होना स्वाभाविक है।

धर्मान्तरण करने पर भी बहुसंख्यक वर्ग को कोई विशेष लाभ नही हुआ क्योंकि मुस्लिम आक्रान्ताओं के पास न तो नव–मुसलमानों को विधिवत् धर्म में शामिल करने एवं प्रशिक्षित करने का समय था और न उन्होंने इसकी आवश्यकता ही समझी। नव–मुसलमानों को भी इस्लाम धर्म, कुरान या खुदा की कोई आवश्यकता नही थी। वे या तो बलात् मुसलमान बनाये गये थे या सुरक्षा के डर एवं रोजगार की सुलभता से मुसलमान बने थे। इसलिए धर्मान्तरित होने के बाद भी इनमें जातीयता, ऊँच–नीच तथा छुआछूत की भावना ज्यों की त्यों बनी रही। कालान्तर में जब पुनः भारत गुलामी की तरफ अग्रसर हुआ और यहाँ ईसाई मिशनरियों ने प्रवेश किया और वे राजाओं

तथा ब्राहमणों को अपनी तरफ आकर्षित करने में असफल हो गये तो देश के बहुसंख्य वर्ग की तरफ आकर्षित हुए क्योंकि उन्होंने देख लिया था कि इस वर्ग में 'कछुआ धर्म' का कोई महत्त्व नही है। इनका धर्म इनकी रसोई और लोटे में कैद नही है। देश में ईसाई मतान्तरण की प्रवृत्ति पर प्रकाश डालते हुए आलोच्य रचनाकार का यह कथन – ''मैं पीड़ित था इस दुनिया में। मैं पीड़ित था क्योंकि समाज मुझे नीच समझता था, मुझसे घृणा करता था। समाज मुझे इसलिए नीच समझता था क्योंकि इस समाज का जन्म दाता धर्म, ऊँच–नीच और घृणा की शिक्षा देता था। मैं पीड़ित था क्योंकि निर्धन था परन्तु ईसाई मिशनरी खुदा की बादशाहत में मुक्ति तथा समानता दिलाने का वायदा करता था।'' सर्वथा उपयुक्त ही है क्योंकि इस समय तक हिन्दुओं की स्वार्थवृत्ति में जहाँ और वृद्धि हो गयी, उनकी कथनी और करनी में पर्याप्त अन्तर हो गया था, वही मुसलमान भी इससे अछूते नही रह गये थे। धर्मान्धता सत्ता का अहंकार, अपने को सर्वोपरि मानने का मिथ्या दम्भ इस समय तक मुसलमानों में भी कूट–कूट कर भर गया था।

अंग्रेजों ने अपनी योग्यता, अनुशासन और भारतीय नरेशों के छल–कपट के बल पर सम्पूर्ण भारत वर्ष में अपना आधिपत्य जमा लिया। उनके आने से शिक्षा के सदियों से बन्द दरवाजे तथाकथित निम्नवर्ग एवं स्त्रियों के लिए भी खुल गये और धीरे–धीरे इस वर्ग में चेतना का संचार होने लगा। इसका लाभ अंग्रेजों को मिला। 1857 ई0 की क्रान्ति को कुचलने के लिए अंग्रेजों ने अपनी मेहतरों की फौज को आगे किया। मेहतरों की इस देशी फौज ने यहाँ के शासक वर्ग को न केवल परास्त किया वरन् जहाँ कहीं अवसर मिला वहीं अपनी भड़ास निकाली। आलोच्य रचना में इसी तथ्य का मार्मिक वर्णन किया गया है– ''कर्नल नील ने कानपुर में बदला लेने की भावना से अंग्रेज औरतों और बच्चों के खून का बदला लेने के लिए मेहतरों की फौज को हुक्म दिया कि वे वहाँ के बागी मुसलमानों और हिन्दुओं को सजा दें। मुसलमान और हिन्दू बन्दियों को हुक्म दिया कि वे वे फर्श को जबान से चाटकर साफ करें, जिन्होंने अंग्रेजी बच्चों और महिलाओं का 'पवित्र' खून बहाया था। इस आदेश पर अमल कराने की जिम्मेदारी मेहतर फौज के सिपाहियों और अफसरों को सौंपी गई; वे मौत और सजा के डर के मारे जबान से फर्श चाटते और मुझे तथा मेहतर बिरादरी को गालियाँ देते जाते थे।''

अंग्रेजी शासन काल में तथाकथित निम्न जाति के लोगों ने सामूहिक रूप से धर्म परिवर्तन किया क्योंकि हिन्दू धर्म से जुड़े रहने पर सभी योग्यताओं और खूबियों के रहते हुए भी वे कुछ नही कर सकते थे। जबकि धर्म परिवर्तन करके जब वही व्यक्ति मुसलमान, ईसाई या बौद्ध हो जाता था तब वह आदरणीय बन जाता था। इसीलिए रचनाकार ने धर्म परिवर्तन को आवश्यक मानते हुए कहा है– ''दर असल धर्म परिवर्तन में ही मेरी उन्नति और प्रगति है। धर्म परिवर्तन से न केवल उन्नति के द्वारा खुल जाते थे बल्कि मेरा पूरा व्यक्तित्व ही बदल जाता था। जो लोग धर्म परिवर्तन करके हिन्दू समाज से बाहर पहुँच गये, वे कहाँ से कहाँ पहुँच गये। परन्तु जो लोग हिन्दू धर्म से चिपके रहे, वे केवल घृणित भंगी ही बने रहे। जो धर्म मेरी इस दुर्दशा का मूल कारण है, मै उसे छोड़ क्यों नही देता।'' जब अग्रेजों ने देश की व्यवस्था के सुचारू संचालन हेतु जनगणना कराने का निर्णय किया और धर्म आधारित गणना आरम्भ कर दी तो प्रथम बार हिन्दू धर्म के रहनुमाओं को यह स्पष्ट दीख पड़ने लगा कि वे अल्पसंख्यक होने वाले है। कारण हिन्दुओं के छुआ–छूत, जाति–पाँति, ऊँच–नीच की भावना से प्रताड़ित बहुसंख्यक वर्ग तीव्र गति से धर्म परिवर्तन कर रहा था। ऐसे में ईसाई, मुसलमान, सिख एवं बौद्ध धर्मानुयायियों की संख्या वृद्धि एवं हिन्दू धर्म का अल्पसंख्यक होना तय था। हिन्दुओं ने राजनैतिक दृष्टिकोण से जनगणना के महत्त्व को समझ कर पुनः इस प्रताड़ित वर्ग को

बरगलाना, बहकाना एवं नाना प्रकार के प्रलोभन देना आरम्भ कर दिया। कोई इन्हें आदि हिन्दू कहता, कोई पूर्व जन्म के ब्राह्मण, कोई कहता वर्ण और जाति कर्म आधारित है, जन्म आधारित नही। हिन्दू नेताओं तथा समाज सुधारकों के इस काया पलट व्यवहार पर व्यंग्य करते हुए लेखक कहता है कि ''मेरे इन पुराने शोषकों की नई हमदर्दी का कारण केवल मुझसे हमदर्दी नही था, न ही उनके मन में एकाएक मानवता का प्यार उमड़ आया था। वे केवल एक नया नाम देकर मुझे हिन्दुओं में मिलाये रखना चाहते थे ताकि जनगणना में मुझे हिन्दू लिखा जाय और हिन्दुओं की जन संख्या में वृद्धि होती जाये।''

भारतीय समाज और राजनीति में डॉ0 भीमराव अम्बेडकर दलितों, शोषितों एवं पीड़ितों के हित साधन के लिए एक देवदूत की तरह आये। उन्होंने हिन्दू धर्म की बुराईयों तथा बहुसंख्यक वर्ग की अवनति, दुर्दशा के कारणों की पहचान कर ली। डॉ अम्बेडकर ने यह स्पष्ट देख लिया कि ''हिन्दू धर्म का विष ज्यों–ज्यों किसी समाज में फैलने लगता है, वह खुद–ब–खुद टुकड़े–टुकड़े होने लगता है। ऊँच–नीच, छूत–अछूत, सवर्ण–अवर्ण का भेदभाव अपने आप उत्पन्न होने लगता है। समाज छोटे–छोटे टुकड़ों में बँटने लगता है। छोटी–छोटी टुकड़ियों तथा जातियों और उपजातियों के बढ़ने के कारण ग्रुप छोटा होता चला जाता है। कम संख्या में होने के कारण उसमें साहस और शक्ति खत्म होने लगती है। फिर आत्मविश्वास खत्म होने लगता है।'' डॉ0 अम्बेडकर यह जान गये थे कि समूह के छोटा होने से व्यक्ति का आत्मविश्वास, आत्म शक्ति ओर आत्म सम्मान सब नष्ट हो जाते हैं। इसीलिए वे बहुसंख्यक वर्ग को पुनः एकत्र और संगठित करने के प्रयत्न लगे। इस सम्बन्ध में उनका अभिमत था कि ''ये अलग–अलग पेशों को करने वाले एक ही नस्ल और एक ही धर्म के लोग हैं, वे सब हिन्दू धर्म, जाति–पाँति और गरीबी के शिकार है। हमारा माझी एक था, हमारा भविष्य एक होगा। एक झंडे तले, एक पार्टी, एक धर्म, एक जाति के रूप में संगठित हो जाओ। शिक्षा ग्रहण करो, संगठित हो, सघर्ष करो, राजसत्ता छीनने की कोशिश करो जब तक राजसत्ता तुम्हारे हाथ में नही आ जाती, तुम्हारा शोषण बन्द नही हो सकता, अत्याचार बन्द नही हो सकता, अपमान बन्द नही हो सकता, बेइंसाफी बन्द नही हो सकती। तुम इंसान भी नही माने जा सकते, जागो और अपने आप को पहचानो। अब तुम्हारा युग आने वाला है।''

आधुनिक युग के दो महान नेताओं डॉ0 अम्बेडकर और महात्मा गाँधी में से लेखक ने अम्बेडकर के समाज, दर्शन की जहाँ मुक्त कंठ प्रशंसा की है वही गाँधी जी द्वारा किये गये कुछ कार्यों यथा, अपने आश्रम में गाँधी जी द्वारा स्वयं गंदगी उठाने की प्रशंसा करते हुए भी उन्हें सर्व समाज का सुधारक एवं निष्पक्ष नेता नही माना है। इस क्रम में यह ध्यात्व है कि गाँधी ने तथाकथित नीच अछूत लोगों को अपना पेशा नही छोड़ने को कहा था और यह भी कहा था कि 'भंगी' का कार्य महान है। मैं भी अगले जन्म में भंगी बनना चाहूँगा। गाँधी जी के इस कथन के अभिप्राय में छिपे षडयन्त्र को सभी जानते है। यदि भंगी का कार्य महान है और वे अगले जन्म में भंगी बनना चाहते थे तो इसी जन्म में उन्होंने यह 'महान' कार्य स्वयं तथा अपने अनुयायियों को करने के लिए तैयार क्यों नही किया ? यह प्रश्न स्वतंत्र रूप से चिंतन की मांग करता है।

स्वतंत्र भारत में अनपढ़ जातीय नेताओं की बाढ़ सी आ गयी। सभी राजनीतिक दलों ने आरक्षित सीटों पर अपने पिट्ठुओं को नेतृत्व का जिम्मा सौपा। इस पर व्यंग्य करते हुए लेखक का यह कहना कि ''जहाँ अन्य बाहरी देशों में लोग संघर्ष करते है और सेवा, त्याग, साहस, ज्ञान, नेतृत्व जैसी खूबियों के कारण जनता में से लीडर पैदा होते हैं। उनके अनुयायी ही उनकी शक्ति बनते हैं और वे अपने अनुयायियों के प्रति

वफादार रहते हैं, परन्तु भारत एक विचित्र देश है। यहाँ सत्ताधारी राजनीतिक पार्टियाँ अछूतों तथा कमजोर वर्ग के लोगों में से कुछ अनपढ़ या अधपढ़ स्वार्थी लोगों को चुनकर सांसद या विधायक बनाकर उनके सर पर नेता बनाकर बिठा देती हैं और वे फिर अपने अनुयायी पैदा करने की कोशिश करते हैं। ऐसे लोगों को मेरा नेता कहा जाता है। ये नेता सत्ताधारी तथा शक्तिशाली वर्ग के दलाल बने रहते है।'' स्पष्ट है कि ऐसे थोपे एवं स्वार्थ के कारण बनाये गये नेताओं में नेतृत्व के कौन से गुण होते होगें ? उनके द्वारा समाज सेवा एवं देश सेवा की कौन सी इबारतें लिखी जाती है, यह आज के भारत में स्पष्ट दिखाई देता है। जहाँ आज देश को आजाद हुए छः दशक से ज्यादा समय बीत गया है किन्तु अभी तक देश आर्थिक बराबरी की कौन कहे सामाजिक बराबरी, स्त्रियों के अधिकारों की सुरक्षा, बालापराध, वैश्यावृत्ति, आतंकवाद, नक्सलवाद, जातिवाद, धर्मवाद जैसी असंख्य बीमारियों से ही मुक्ति नही पा सका है।

संक्षेप में अभिप्राय यह है कि 'मैं भंगी हूँ' पठनीयता से भरपूर एक जैसी आत्मकथात्मक कृति है जिसमें समाज के अधिसंख्य वर्ग को दलित बनाने एवं उसके शोषक ने अनोखे व दुर्दान्त उपायों का व्यापक चित्रण है। साथ ही इसमें धर्मान्तरण के कारण, उससे मिलने वाले फल एवं छल, जातिवादी मानसिकता के भंयकर जीवाणुओं के शाश्वत बढ़ने, पौरोहित्यवाद की वर्चस्व–वृद्धि एवं दलित शोषण, बौद्ध धर्म एवं अम्बेडकर के दलितोत्थान एवं कल्याण के सद्प्रयासों का विशद् वर्णन किया गया है। राज्य सत्ता, धर्म सत्ता, समाज तीनों द्वारा दलित वर्ग के प्रति अपनाये गये क्रूर व्यवहारों का विस्तृत लेखा–जोखा आलोच्य कृति में उपलब्ध है। इसमें रचनाकार ने जहाँ बहुसंख्यक वर्ण के शोषण के दुखद एवं कष्टदायी इतिहास के पन्नों को पलटा है वहीं भविष्य की सुखद एवं स्वस्थ कल्पना भी की है। दलितों की आर्थिक उन्नति, सामजिक समरसता, बधुत्व, न्याय और मानव–मानव में मानवता का सम्बन्ध कैसे विकसित होगा ? यह समाज धार्मिक, राजनैतिक एवं सामाजिक स्वतंत्रता कैसे प्राप्त करेगा ? इसका उपाय भी लेखक ने इसी आत्मकथा में बताया है। उसी के शब्दों में– ''अपनी मदद आप करना और आत्म सम्मान तथा आत्मविश्वास ही सबसे बड़े मित्र हैं। जो कभी धोखा नही देते। मेरा नारा सबकी सेवा करना और अपने को मिट्टी में मिलाना नही, अब मेरा नारा विद्रोह है– क्रान्ति है। स्वतंत्रता है, स्वराज्य है। मेरा उद्देश्य पुराने को तोड़ कर नया बनाना है। मैं जीना चाहता हूँ और सम्मान से जीना चाहता हूँ परन्तु नीच अछूत बन कर नही, महार और मांग बन कर नही, धानुक या डोमार बनकर नही, चूहड़ा और चमार बनकर नही बल्कि एक अच्छा इंसान बनकर जीना चाहता हूँ।'' यहाँ मै एक बात और स्पष्ट करना चाहता हूँ कि आत्मकथा लेखन में जिस प्रकार की स्पष्टता, प्रामाणिकता, निर्ममता और सपाट बयानी की आवश्यकता होती है वह 'मैं भंगी हूँ' तथा इसके अनन्तर आयी दलित आत्मकथाओं में प्रति ध्वनित होती हैं। एक तथ्य यह भी है कि भारतीय समाज के चरित्र में कुछ समय पूर्व तक यह विशेषतायें नगण्य थीं क्योंकि हमारे यहाँ आदर्श और व्यवहार में अनेक छल और आडम्बर भरे रहते थे। यह क्रम दलित आत्मकथाओं के लेखन ध्वस्त हुआ है। आशा है 'मैं भंगी हूँ' एवं समानधर्मा रचनाओं के आने से रूढ़िवादी सनातनी सवर्ण समाज समानता, स्वतंत्रता, बंधुत्व एवं न्याय की पक्षधरता ग्रहण करने का प्रयास करेगा।

सन्दर्भ ग्रंथ–सूची

- 'मै भंगी हूँ' – लेखक श्री भगवान दास–प्रकाशन जालंधर,पंजाब, सन् 1981ई0